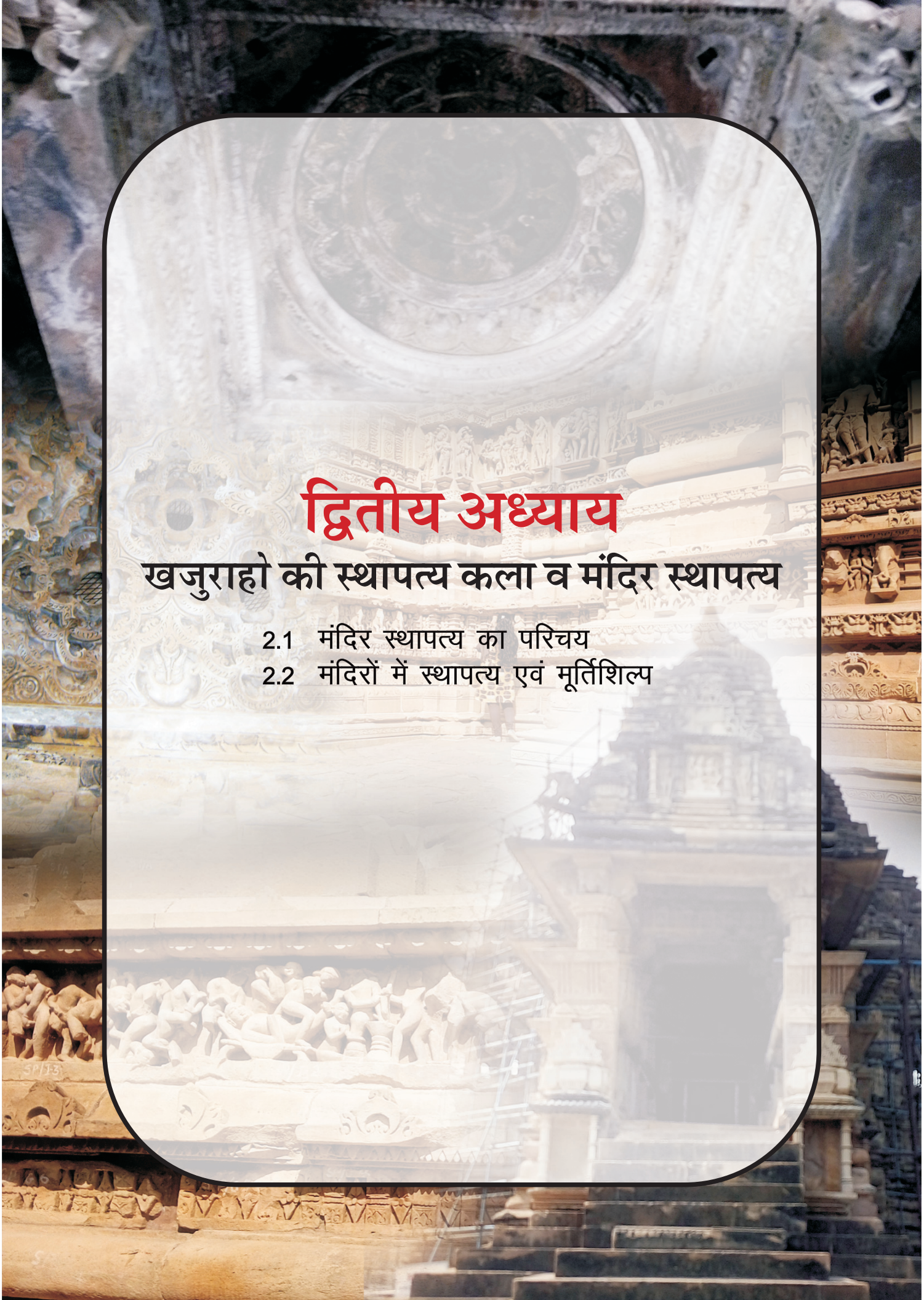

द्वितीय अध्याय

खजुराहो की स्थापत्य कला व मंदिर स्थापत्य

2.1 मंदिर स्थापत्य का परिचय

2.2 मंदिरों में स्थापत्य एवं मूर्तिशिल्प

द्वितीय अध्याय

खजुराहो की स्थापत्य कला व मंदिर स्थापत्य

भारत वर्ष में स्थापत्य[1] कला अत्यन्त प्राचीन है।[2] स्थापत्य का अत्यंत प्राचीन स्वरूप नव प्रस्तुर युगीन मानव ने प्रस्तुत किया, जब उसने गीली मिट्टी छापकर फूंस की कुटिया अपने रहने के लिए खड़ी की।[3] फिर इसके बाद धीरे–धीरे कृषि का आरंभ हुआ और कृषि में सहायक नदियों के जल को रोकने के लिए बांध बनने लगे व मनुष्य ने समूह में रहना शुरू किया तब गांव व नगरों का निर्माण होने लगा था।[4]

तत्पश्चात् मौर्य काल में किलों का निर्माण परकोटों का निर्माण व चन्द्रगुप्त मौर्य के राजभवन का जो वर्णन मिलता है, वह मौर्यकालीन स्थापत्य का अद्‌भुत प्रमाण है। इसी क्रम में हमें कुषाण कालीन भी दो नगर प्राप्त होते हैं जिनमें पहला तक्षशिला के समीप सिरमुख और दूसरा कश्मीर में कानिसपुर (कनिष्कपुर)[5]।

गुप्तकाल तक हमें मंदिरों के प्रत्यक्षतः अवशेष प्राप्त होने लगे हैं, जिनसे उनके वास्तुगत स्वरूप पर प्रकाश डाला जा सकता है।

2.1 मंदिर स्थापत्य का परिचय :

उत्तर वैदिक युग में भक्ति सम्प्रदाय के विकास के साथ देवग्रहों का निर्माण किया गया किन्तु घास–फूंस एवं काष्ठ से निर्मित ये मंदिर साहित्य में तो सुरक्षित हैं किन्तु उनका भौतिक रूप काल के गर्त में समाहित हो गया। साक्षात् रूप में मंदिरों के अवशेष गुप्तकाल से प्राप्त होते हैं।[6]

गुप्तकालीन मंदिरों के निर्माण में ईंट–पत्थर दोनों का प्रयोग हुआ है। गुप्त काल में वैष्णव, शैव, सूर्य आदि पौराणिक धर्म से संबंधित अनेक मंदिर बनाए गए।[7] वास्तुगत विकास की दृष्टि से गुप्त काल के मंदिरों को पाँच भागों में बांटा जा सकता है।[8]

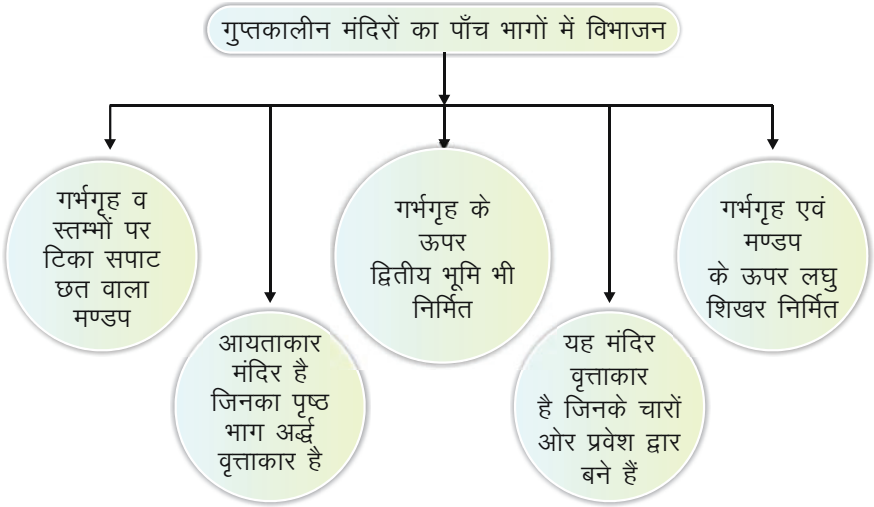

प्रथम वर्ग में वह मंदिर है जिनमें मात्र एक वर्गाकार तथा उसके समक्ष चार स्तम्भों पर टिका मण्डप है उसकी छत सपाट है।[9] इन मंदिरों के उदाहरण सांची मंदिर, कनकाली टिला तिगवा[10] जो मध्य प्रदेश के तिगवा नामक स्थान पर गुप्तकालीन मिला है जो ईंटों का है एवं ऊँचे टीले पर स्थित है।[11]

सांची मन्दिर

द्वितीय वर्ग में वह मंदिर है जिनके गर्भगृह की छत सपाट है सामने स्तम्भों से युक्त मण्डप है, गर्भगृह के चतुर्दिक ढका प्रदक्षिणापथ है तथा गर्भगृह के ऊपर द्वितीय भूमि भी निर्मित है।[12]

द्वितीय भूमि युक्त मन्दिर

तृतीय वर्ग के मंदिरों में गर्भगृह एवं मण्डप के साथ ही गर्भगृह के ऊपर लघु शिखर निर्मित है।[13]

चतुर्थ वर्ग के मंदिरों में परम्परा के विपरीत आयताकार है। जिनका पृष्ठभाग अर्द्धवृत्ताकार है।[14]

पंचम वर्ग के मंदिरों में वृत्ताकार है जिनके चारो ओर चार प्रवेश द्वार बने हैं।[15]

गुप्त काल के बाद संपूर्ण भारत में मंदिर निर्माण की परम्परा प्रारंभ हो गई। वास्तु शास्त्रों में मंदिर की उपमा मानव शरीर से देते हुए उसके आठ अंगों का विधान किया गया। जो निम्नलिखित दिए गए हैं–

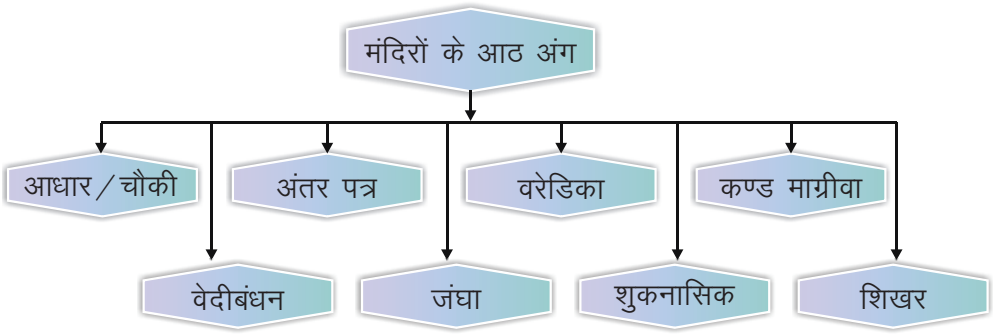

आधार/चौकी : इसे जगतीपीठ भी है।[16] जगती के संदर्भ में हमें अधिक विवेचन समरांगणसूत्रधार के अध्याय 69 में मिलता है जिसका नाम 'जगतीलक्षण' है इस अध्याय के श्लोक–

'अमराणां कृतानंदा कृत्वैनां मोक्षमाप्रयात्'।।581।।[17]

में कहा गया है कि यह जगती देवताओं के लिए आनंदकारी और (निर्माता को) मोक्ष प्रदान करने वाली होती है।[18]

- **वेदीबंधन** : आधार के ऊपर गोल एवं चौकोर अंग।[19]
- **अंतर पत्र**–वेदीबंधन के ऊपर की कल्पवल्ली या पत्रावली पट्टिका।
- **जंधा**–मंदिर का मध्यवर्ती धारण स्थल।
- **वरेडिका**–ऊपर का बरामदा।
- **शुकनासिका**–मंदिर के ऊपर बाहर निकला भाग।
- **कष्ठ या ग्रीवा**–शिखर के ठीक नीचे का भाग।
- **शिखर**–शीर्ष भाग जिस पर खखुजिया आकार का आमलक होता है।[20]

यह मंदिर निर्माण के आठों अंग संपूर्ण भारत में प्रचलित हो गए। इसी के साथ प्रवेश द्वार (तोरण) को कई शाखाओं में विभाजित करने तथा उसे विविध प्रकार के अलंकरणों से सजाने की प्रथा भी प्रचलित हुई। **(चित्र सं.–2.1)**

सातवीं शती से संपूर्ण भारत में स्थापत्य कला में एक नया मोड़ आया तथा उत्तर भारत, मध्य एवं दक्षिण की कला अपनी निजी विशेषताओं के साथ प्रस्तुत की गई।[21] और इस समय अनेक शास्त्रीय ग्रंथों मानसोल्लास, मानसार, समरागंणसूत्रधार, उपराजितपृच्छा, शिल्प प्रकाश, सुप्रभेदागम् आदि की रचना हुई तथा इनमें मंदिर वास्तु के मानक निर्धारित किए गए। इनके अनुपालन में कलाकारों ने अपनी कृतियाँ प्रस्तुत की।[22]

मंदिर स्थापत्य कला के क्षेत्र में तीन प्रकार के शिखरों का उल्लेख मिलता है जिनके आधार पर मंदिर निर्माण की तीन शैलियों का विकास हुआ।[23]

मंदिर निर्माण की तीन शैली

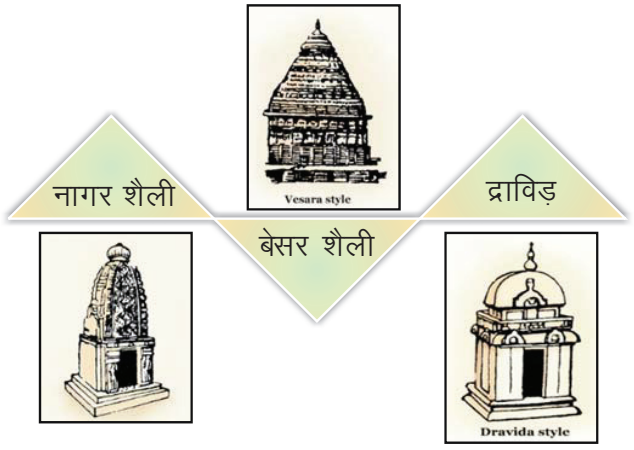

उपर्युक्त सभी नाम भौगोलिक आधार पर दिए गए हैं, नागर शैली उत्तर भारत की शैली थी। जिसका विस्तार हिमालय से विंध्य पर्वत तक दिखाई पड़ता है। द्रविड़ शैली का प्रयोग कृष्णा नदी से कन्या कुमारी तक मिलता है। विंध्य तक कृष्णा नदी के बीच के क्षेत्र में बेसर शैली प्रचलित हुई।[24]

सामान्यतः ये शैलियाँ भौगोलिक क्षेत्रों से संबंध रखती हैं किन्तु डॉ. उपाध्याय के शब्दों में–''इन शैलियों के प्रसार का अनुबंधन सर्वथा अनुलंवनीय नही है।'' यही कारण है कि नागर शैली के कुछ मंदिर दक्षिण में मिले हैं तो कुछ द्रविड़ शैली के उत्तर में जैसे वृंदावन का श्री रंगनाथ जी का मंदिर **(चित्र सं.–2.2)**

ऐसा ही द्रविड़ शैली का मंदिर है। उत्तर भारत में भी द्रविड़[25] शैली के मंदिर निर्मित हुए हैं। इस प्रकार इन शैलियों ने अपनी भौगोलिक सीमाओं को भी तोड़ा है।[26]

•# **नागर शैली**–ये मंदिर प्रायः शिखर मंदिर थे।[27] खजुराहो के मन्दिर नागर शैली के उत्तम उदाहरण है। इसके अलावा राजस्थान के उदयपुर में स्थित सास–बहू मन्दिर भी खजुराहो के मन्दिरों से साम्यता रखता है।

सास–बहू मन्दिर

खजुराहो मन्दिर

•# **द्राविड़ शैली**–दक्षिण भारत के मंदिर प्रायः द्राविड़ शैली के हैं। इनके शीर्ष या छतें प्रायः गजप्रष्ठाकृत[28] होती हैं। इनके विमान अधिक ऊँचे और बहुभौमिक गगनचुम्बी गोपुरों[29] से अलंकृत होते हैं।

•# **बेसर शैली**–मध्य भारत तथा कर्नाटक के कतिपय मंदिरों में प्रायः उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों शैलियों का सम्मिलित स्वरूप मिलता है। कर्नाटक में 'चालुक्य' [30] मंदिर प्रायः बेसर शैली के माने जा सकते हैं।[31]

गुप्त कला सर्वोत्कृष्ट थी, यह निर्विवाद है परन्तु पूर्व मध्यवर्ती अर्थात् 600 से 900 ई. तक के युग में भी यह कला विकासोन्मुख ही थी।[32]

इस समय की स्थापत्य व मूर्तिकला के विभिन्न केन्द्र तीन राजवंशों के आश्रय में विकसित हुए।[33]

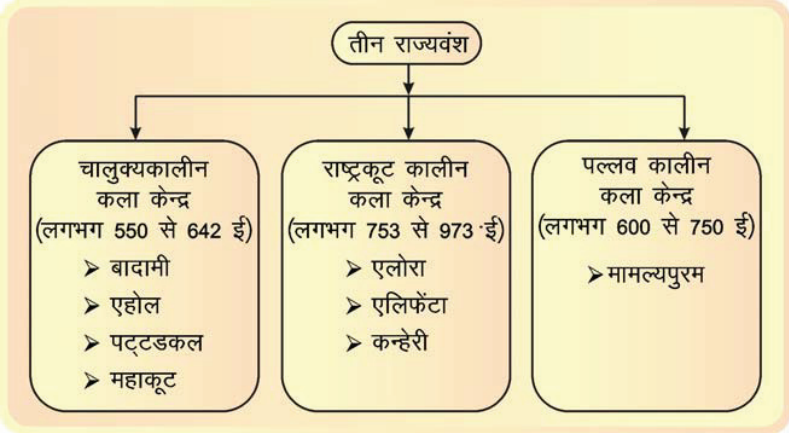

चालुक्य कालीन मंदिर स्थापत्य :

चालुक्य मंदिर स्थापत्य के विकास के दृष्टिकोण को देखें तो पाएंगे कि प्रारंभिक मंदिर गुप्तकालीन मंदिरों से साम्य रखते हैं। उनकी छतें चपटी हैं अथवा थोड़ी सी झुकी हुई हैं। परन्तु विकसित मंदिरों में दो मंजिलें प्रतीत होती हैं जिसमें शिखर ने ही दूसरी मंजिल का स्वरूप ले लिया है। चालुक्य मंदिर स्थापत्य में तीन मुख्य विशेषताएँ हैं।[34]

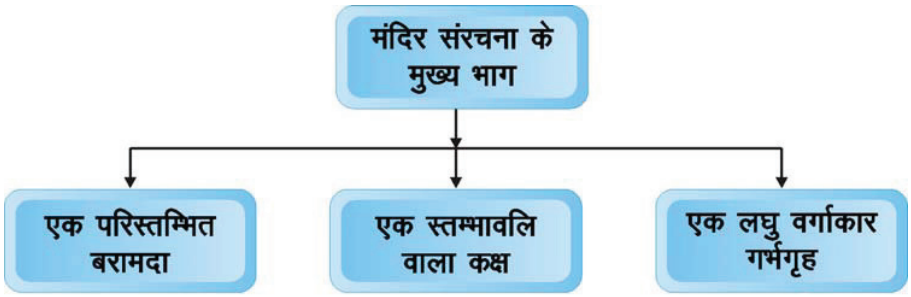

चालुक्य मंदिरों में बादमी एहोल व पट्टडकल के मंदिर मुख्य रूप से देखने को मिलते हैं जिनमें लाड–खान का मंदिर यहाँ का प्राचीनतम मंदिर है।[35]

ये मंदिर चट्टानों को काटकर बनाए गए हैं। इन मंदिरों में पीले रंग का बलुआ पत्थर देखने को मिलता है। जैसे उपरोक्त चित्रों में आप देख सकते हैं।[36]

राष्ट्रकूट कालीन मंदिर स्थापत्य : राष्ट्रकूट शासकों के काल में विशाल पहाड़ियों को काटकर गुफाओं और मंदिरों का निर्माण किया गया। इनके काल में मुख्यतः एलोरा, एलिफेंटा और कन्हेरी गुफा मंदिरों का निर्माण हुआ। एलोरा की जगत

प्रसिद्ध गुफाएँ लगभग चार–पाँच सौ वर्षों के भीतर निर्मित हुई एलोरा का कैलास मंदिर 8वीं शती में बना।[37] इसे एक ही चट्टान से काटकर निर्मित किया गया है। इस मंदिर में चट्टान को काटकर इस मंदिर के दरवाजे, झरोखे, सीढ़ियाँ तथा सुदर स्तम्भों की पंक्तियाँ बनाई गई हैं। यह मंदिर दुमंजिला बनाया गया है निम्नलिखित चित्रों में यह विशेषताएँ देखी जा सकती हैं।[38]

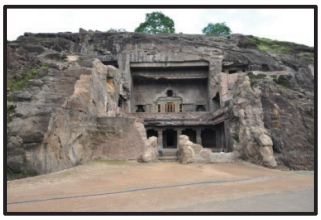

एलोरा

एलिफेंटा

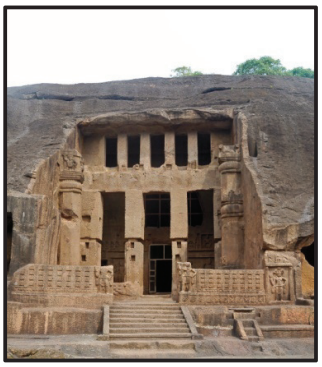

कन्हेरी

पल्लव कालीन मंदिर स्थापत्य : पूर्वमध्यकालीन कला के तीसरे मुख्य केन्द्र दक्षिण में कांची के सामने समुद्रतट पर मामल्लपुरम् में चट्टानों से काटे गए विशाल मंदिर हैं। जिन्हें रथ[39] कहा गया है। इसी स्थान को महाबलीपुरम् के नाम से भी जाना जाता है।

पूर्व मध्य काल गुफा मंदिरों की भव्यता और महान् मूर्तिकला की परम्परा का परिचायक रहा, वही उत्तर मध्यकाल में विशाल व भव्य मंदिर आधारित शिल्प कला का विकास हुआ।[40] जिन राज्यवंशों ने इनके निर्माण में अपना महान् व महत्वपूर्ण योगदान दिया उनमें से अनेक आज भी विद्यमान हैं। जिनमें से एक है, चंदेल राजाओं द्वारा बनाए गए खजुराहो के मंदिर व मूर्तिशिल्प[41] खजुराहो का मूर्ति निर्माण जितना ही प्रशस्त एवं उत्कृष्ट है उसी प्रकार मंदिरों का स्थापत्य भी उतना ही अनुपम है।[42] खजुराहो के कुछ मंदिर स्थापत्य व मूर्ति शिल्प का विवेचन निम्नलिखित हैं–

2.2 मंदिरों में स्थापत्य एवं मूर्तिशिल्प :

खजुराहो के मंदिर पूर्व मध्यकालीन भारतीय वास्तु तथा मूर्तिशिल्प के उत्कृष्ट उदाहरण माने जाते हैं। नागर शैली की उत्कृष्ट विशेषता इन मंदिरों में देखी जा सकती है।

खजुराहो के मंदिर प्रायः ऊँची चौकी या अधिष्ठान के ऊपर बनाए गए। इनके चारों ओर किसी प्रकार का घेरा या दीवार नहीं है। इनका निर्माण पूर्ण पश्मिाभिमुख धुरी के ऊपर हुआ। खजुराहो के मंदिरों में मंदिर वास्तु कला का विकसित रूप दृष्टिगोचर होता है। इन मंदिरों के निर्माण में निरंधार और संधार मंदिरों के उदाहरण देखने को मिलते हैं। यहाँ चार विशाल मंदिर संधार हैं जिनमें आंतरिक प्रदक्षिणा पथ है। इन मंदिरों की तालिका निम्नलिखित है–

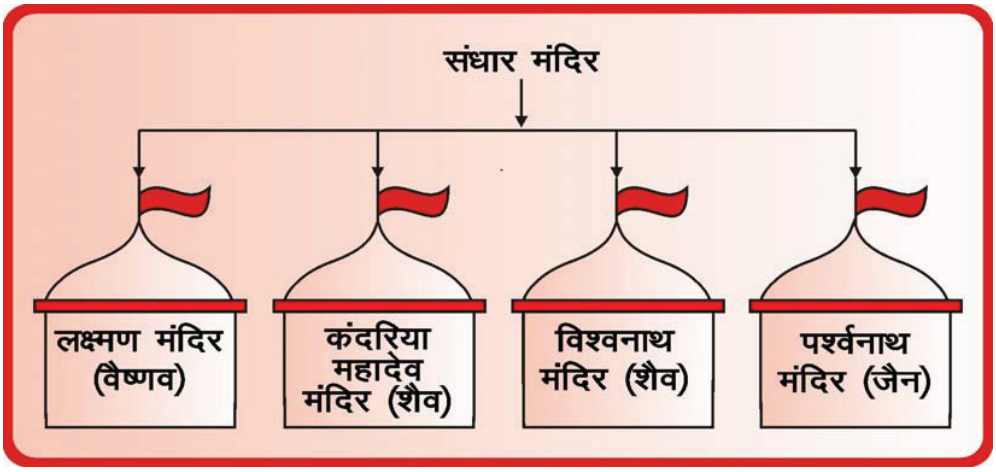

खजुराहो के मंदिरों को आंतरिक रूप में पाँच भागों में बांटा जा सकता है : जो निम्नलिखित हैं–

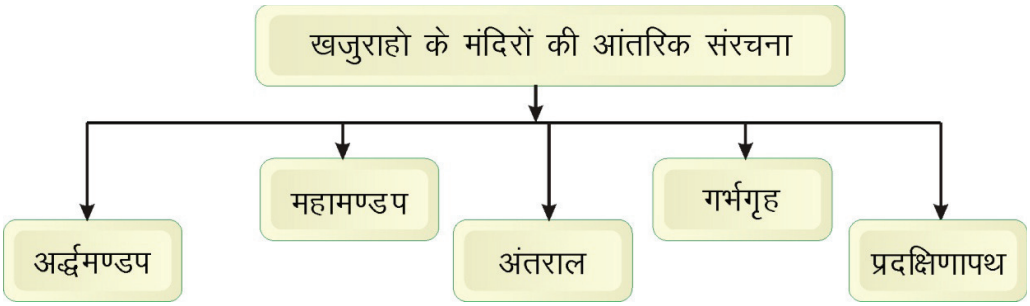

1. **अर्द्धमण्डप :** प्रवेश कक्ष जिसे 'अर्द्धमण्डप' कहा जाता है।

2. **महामण्डप :** अर्द्धमण्डप के बाद चबूतरे वाला भाग आता है जो 'महामण्डप' कहलाता है और इसका प्रयोग धार्मिक उत्सवों पर नृत्यांगनाओं द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम करने के लिए किया जाता था, यहाँ वे नृत्य आदि करती थी।

3. **अंतराल :** यह स्थान पुजारियों के पूजन व पाठ कराने में सहायता करता है। इस भाग का गर्भगृह व महामण्डप से सीधा सम्पर्क होता है।

4. **गर्भगृह :** गर्भगृह में मंदिर के इष्ट देव विराजमान होते हैं। **(चित्र सं.–2.3)**

5. **प्रदक्षिणापथ :** यह मंदिर का पांचवा व अंतिम भाग जो मंदिर के बाह्य दीवार और गर्भगृह की बाह्य दीवार के मध्य परिक्रमा स्थल अर्थात् 'प्रदक्षिणापथ' है। निरंधार शैली की मंदिरों में यह मुख्य मंदिर के बाहर ही होता है और सांधार शैली के मंदिरों में दो प्रदक्षिणा पथ होते हैं। एक गर्भगृह के बाहर और दूसरा मुख्य मंदिर के बाहर।

खजुराहो के प्रमुख मंदिर स्थापत्य व मूर्तिशिल्प के उदाहरण निम्नलिखित हैं–

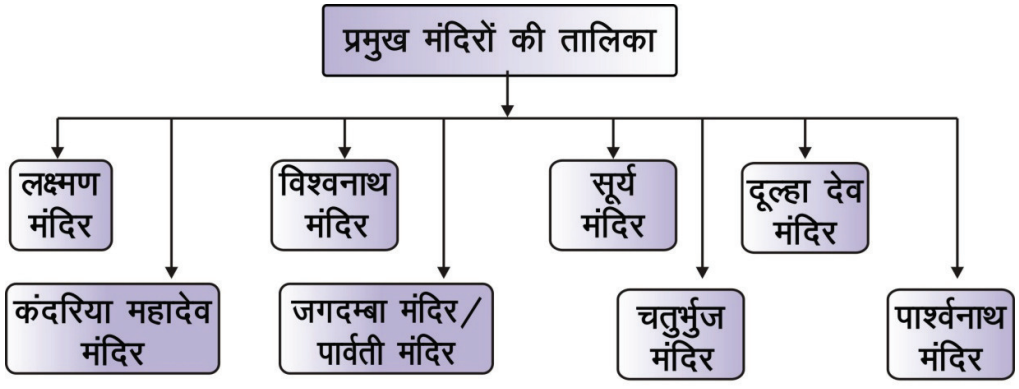

1. **लक्ष्मण मंदिर स्थापत्य व मूर्तिशिल्प :**

यह मंदिर वैष्णव धर्म से संबंधित मंदिर हैं। इसके गर्भगृह में भगवान विष्णु की प्रतिमा स्थापित है। यह मंदिर राजा यशोवर्मन ने बनवाया था, यशोवर्मन को

लक्ष्मणवर्मन भी कहा जाता है। उन्हीं के नाम पर इस मंदिर को 'लक्ष्मण मंदिर' कहा गया। कहा जाता है कि इस मंदिर को बनवाने के लिए 16 हजार शिल्पकारों को मथुरा से बुलाया गया था।

यह मंदिर पंचायतन शैली का उदाहरण है। इस मंदिर में दो प्रदक्षिणा पथ देखे जा सकते हैं। संपूर्ण मंदिर ऊँची जगती पर बना है। मंदिर के निर्माण में लाल बलुआ पत्थर का प्रयोग हुआ जो विविध तान लिए हुए हैं। दूर से संपूर्ण मंदिर ऐसा प्रतीत होता है मानो चंदन की लकड़ी से निर्मित है और चंदन की लकड़ी में ही अलंकरण किया गया है (**चित्र सं.–2.4**)।

मंदिर का स्थापत्य विकास मंदिर के इन सभी भागों में देखा जा सकता है जिनमें अर्द्धमण्डप, मण्डप, महामण्डप, अंतराल तथा गर्भगृह है यह मंदिर पंथ रथ है। मंदिर का शिखर लघु शिखरों के समूहों से युक्त है। मंदिर की बाहरी दीवार पर अलंकृत स्तम्भों से युक्त वातायन निर्मित है (**चित्र सं.–2.5**)। दीवारों अर्थात् मंदिर की वाह्य भित्ति (जंघा) पर दो पंक्तियां हैं जिनमें देवी देवतागण, अप्सराएँ तथा मिथुन आदि विषय उत्कीर्ण हैं (**चित्र सं.–2.6**)।

मंदिर का प्रवेश द्वार एक ही पत्थर से बने तोरण से सुसज्जित है प्रवेश द्वार पर भगवान सूर्य की अद्वितीय रूप में प्रतिमा है (**चित्र सं.–2.7**)।

मंदिर की बायें से दायें ओर की प्ररिक्रमा में हमें सर्वप्रथम विघ्नेश्वर भगवान गणेश की प्रतिमा देखने को मिलती है (**चित्र सं.–2.8**)। देवीबंध तक हमें बेलबूटों एवं कीर्तिमुख तथा हाथियों की एक पंक्ति दिखाई देती है (**चित्र सं.–2.9**)। उसके ऊपर छोटी–छोटी प्रतिमाओं की दो लाइनें हैं जिनमें नृत्य, संगीत, शिकार, युद्ध, मैथुन आदि के दृश्य हैं। साधारणतः यह कहा जा सकता है कि इन लाइनों में उस समय के रहन–सहन, रीति–रिवाज व परम्पराओं को जाना जा सकता है (**चित्र सं.–2.10**)।

प्रतिमाओं की इन दो पंक्तियों से ऊपर मंदिर की जंघा पर बड़ी प्रतिमाओं की दो पंक्तियाँ बनी हैं ये प्रतिमाएँ लगभग ढाई फीट (2½) ऊँची है। ऊपर की पंक्ति में विष्णु तथा नीचे की कतार में शिव की प्रतिमाएँ अपने विशेष चिन्हों जैसे विष्णु शंख, चक्र, गदा, पदम एवं शिव त्रिशूल, नाग, रूद्राक्ष की माला व कमण्डल के साथ अभय तथा वरद मुद्राओं में दिखलाए गए हैं। इन दोनों देव प्रतिमाओं के दोनों ओर संसार प्रसिद्ध सुर–सुंदरियों, देव–दासियों नाग कन्याओं इत्यादि की विभिन्न भाव, भंगिमाओं में प्रतिमाएँ हैं **(चित्र सं.–2.11)**।

लक्ष्मण मंदिर खजुराहो के सभी मंदिरों में सबसे अच्छी स्थिति में स्थित हैं। बिना किसी क्षति के इस मंदिर का चबूतरा अब भी अपने मूल रूप में सुरक्षित है। मंदिर के बाहर आकर चबूतरे से उतर कर हमें नीचे से मंदिर की एक बाह्य परिक्रमा ले सकते हैं **(चित्र सं.–2.12)**। दांए से बाएं ओर की परिक्रमा में हमें करीब एक फीट ऊँची प्रतिमाओं की एक पंक्ति देखने को मिलती है, जिसमें उस युग की जिस युग में यह मंदिर बना था, जन–जीवन की झांकियाँ हैं। लगभग चार या साढ़े चार फीट लम्बे बने हुए इन पत्थरों के पैनलों में दैनिक जीवन से संबंधित सभी दृश्यों को उत्कीर्ण किया गया है **(चित्र सं.–2.13)**।

2. कंदरिया महादेव मंदिर स्थापत्य व मूर्ति शिल्प :

यह मंदिर विद्याधर के द्वारा बनवाया गया। भगवान शिव को समर्पित यह मंदिर मध्ययुगीन स्थापत्य एवं शिल्प कला का उत्कृष्टतम मंदिर है। खजुराहो के मंदिरों में सबसे अधिक विकसित (सप्तरथ शैली) मंदिर है। भगवान शिव का यह मंदिर 117 फुट ऊँचा, 117 फुट लम्बा एवं 66 फुट चौड़ा है। दूर से इस मंदिर को अवलोकन करने पर ऐसा लगता है जैसे कोई विशाल पर्वत खड़ा हो।

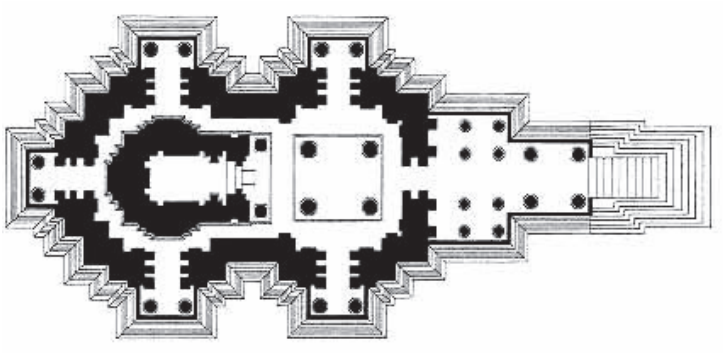

कंदरिया महादेव मंदिर की योजना

इस मन्दिर का प्रवेश द्वार ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी कंदरा अथवा गुफा का द्वार हो। इसलिए इस विशाल मंदिर का नाम कंदरिया पड़ा। इस मंदिर के गर्भगृह में सफेद संगमरमर का शिवलिंग स्थापित है **(चित्र सं.–2.14)**। लोकमत के अनुसार ''जो कि अमरनाथ के शिवलिंग का प्रतीक है।''

इस मंदिर में एक ही पत्थर से बना हुआ मकर की आकृति का तोरण प्रवेश द्वार के ऊपर शोभायमान है जिसे शुभागमन का प्रतीक मानते हैं। तोरण द्वार के ऊपर कई प्रकार की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इनमें नाना प्रकार के वाद्ययंत्र बजाते हुए संगीतकार, देवताओं की मूर्तियाँ प्रेमी युगल, युद्ध, नृत्य एवं राग–विराग आदि की मूर्तियां देखने को मिलती हैं। इसके बाद महामण्डप आता है और महामण्डप की छत के ऊपर जो कारीगरी की गई है, वह अति सुंदर है। यहाँ पर जो नायिकाओं की मूर्तियां गढ़ी हैं उनकी तुलना स्वर्ग की अप्सराओं से की जाती है। पैरों के नूपुर, कमर के कटिबंध, मणि झालर एवं पट्टिका, वक्ष स्थल पर सतलड़ी, मणि माला, हार, हाथों के भुजबंध, चूढ़ा, बंगरी, माथे की बिंदिया, शीश फूल, सिर के पुष्प, मुकुट आदि **(चित्र सं.–2.15)**।

मंदिर वाह्य भित्ति अर्थात् जंघा प्रतिमाओं की तीन पंक्तियाँ देखने को मिलती है। इस मंदिर की देव प्रतिमाएँ एवं सुर–सुंदरियों की मूर्तियाँ जो कि मंदिर की बाह्य भित्ति पर उत्कीर्ण है अन्य मंदिरों की प्रतिमाओं से ज्यादा ऊँची एवं बड़ी है। यह प्रतिमाएँ जैसे सुरा–सुंदरियां, देवदासियां आदि विभिन्न मुद्राओं में बहुत ही

सुंदर ढंग से दिखाई गई हैं। नाग कन्याओं को कोनों में हाथ जोड़कर अभिवादन करते हुए दिखाया गया है **(चित्र सं.–2.16)**।

3. विश्वनाथ मंदिर स्थापत्य व मूर्ति शिल्प :

यह मंदिर राजा धन्गदेव वर्मन के द्वारा निर्मित किया गया था। यह मंदिर भी लक्ष्मण मंदिर के सदृश्य ही पंचायतन शैली में निर्मित किया गया था। किन्तु समय के कारण अब केवल उप–मंदिर उत्तर पूर्व एवं दक्षिण पश्चिम कोनों में ही स्थित है बाकी पूर्व एवं उत्तर पश्चिम कोनों के उप मंदिर टूट चुके हैं। जिनमें से दक्षिण कोने का मंदिर हम **(चित्र सं.–2.17)** देख सकते हैं।

इस मंदिर में भी लक्ष्मण मंदिर के समान पांच भाग हैं प्रारंभिक भाग में मकर तोरण नहीं है जो कि निश्चित ही बना तो होगा पर समय के साथ टूट कर गिर गया होगा या निकाल लिया होगा **(चित्र सं.–2.18)**।

इस मंदिर के मूर्तिशिल्प अन्य मंदिरों के मूर्तिशिल्प की तुलना में अधिक भाव प्रवण व अपेक्षाकृत ज्यादा समृद्ध है। इस मंदिर के गर्भगृह में शिवलिंग स्थापित है और वाह्य भित्ति अर्थात् जंघा को मूर्ति शिल्प की तीन पंक्तियों में विभाजित किया गया है। इन पंक्तियों में देव प्रतिमाओं के दोनों ओर नायिकाओं का विभिन्न मुद्राओं में चित्रण हुआ है। इस मंदिर में नाग कन्याओं के साथ–साथ चंवर डुलाने वाली दासियों के मूर्तिशिल्प भी उत्कीर्ण हैं। इस मंदिर के मूर्तिशिल्प में केश विन्यास की विभिन्नता एवं तरह–तरह के आभूषणों से की गई सज्जा सौंदर्य की दृष्टि से समृद्ध है। इसी क्रम में मंदिर की छोटी प्रतिमाओं वाली लाइनें विशेष रूप से उस युग का चित्रण दिखाती है **(चित्र सं.–2.19)**।

4. जगदम्बी मंदिर/पार्वती मंदिर स्थापत्य व मूर्तिशिल्प :

इस मंदिर में वर्तमान समय में गर्भगृह में स्थापित पार्वती प्रतिमा के कारण इसे देवी जगदम्बी मंदिर कहा जाता है **(चित्र सं.–2.20)**। इसका निर्माण एक ऊँची

जगती पर किया गया है। इस की आंतरिक संरचना में गर्भगृह प्रदक्षिणापथ रहित है। इस मंदिर में गर्भगृह, अंतराल, तीन ओर से वातायनयुक्त महामण्डप तथा अर्द्धमण्डप है। मंदिर के महामण्डप की छत साधारण और वर्गाकार आकार की है **(चित्र सं.–2.21)**। मंदिर की बाह्य भित्ति (जंघा) पर दो पंक्तियों में मूर्तिशिल्प उत्कीर्ण है।

5. चित्रगुप्त मंदिर/सूर्य मंदिर स्थापत्य व मूर्तिशिल्प :

खजुराहो में बने मंदिरों में केवल यही एक मात्र सूर्य मंदिर है। यह मंदिर निरन्धार शैली में निर्मित है अर्थात् इसके आंतरिक भाग को हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं अर्धमण्डप, महामण्डप, अंतराल एवं गर्भगृह। मंदिर के गर्भगृह के ऊपर का शिखर एवं कई स्थानों पर दीवार ईंट तथा चूने के द्वारा जोड़कर फिर से बनाई गई है। जैसा की इस चित्र (**चित्र सं.–2.22**) में देख सकते हैं।

इस मंदिर के गर्भगृह में सूर्य की प्रतिमा को सात घोड़ों से युक्त रथ पर सवार दिखाया गया है। सूर्य के दाहिनी ओर चित्रगुप्त भगवान की एक खण्डित मूर्ति है जो कि लेखनी लिए हुए हैं। उन्हीं के नाम पर इस मंदिर का नाम चित्रगुप्त पड़ा। मंदिर की वाह्य भित्ति पर तीन पंक्तियाँ बड़ी प्रतिमाओं की व एक एक छोटी प्रतिमाओं की है। इन मूर्तियों में विभिन्न विषयों को उत्कीर्ण किया गया है। जैसे–आंलिगनों में युगल पत्थर ढोने, हाथियों की लड़ाई, उत्सवों, शिकार एवं नृत्य आदि से संबंधित है। **(चित्र सं.–2.23)**

6. चतुर्भुज मंदिर स्थापत्य व मूर्तिशिल्प :

यह मंदिर खजुराहो गाँव से लगभग 3–4 किमी. दूर है। यह मंदिर निरंधार शैली में बना हुआ है। इस मंदिर में आंतरिक भागों के रूप में प्रवेश द्वार व गर्भगृह ही है। यह मंदिर आकृति की दृष्टि से छोटा मंदिर है। इस मंदिर की गर्भगृह में स्थापित चतुर्भुज भगवान की मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है। जिसका वर्णन चतुर्थ अध्याय में किया गया है।

7. दूल्हा देव मंदिर स्थापत्य व मूर्तिशिल्प :

यह मंदिर निरंधार शैली का उदाहरण है। इस मंदिर में भी अर्धमण्डप, महामण्डप, अंतराल, गर्भगृह बनाए गए हैं मंदिर का महामण्डप अन्य मंदिरों के महामण्डप से भिन्न है और इसके अतिरिक्त जैसे अन्य मंदिरों में गर्भगृह के द्वार पर तीन लोको का चित्रण हुआ है वहीं इस मंदिर में लोकनृत्य का अंकन सप्त मात्रिकाओं की मूर्तियों के द्वारा किया गया है।

इस मंदिर की वाह्य भित्ति पर मूर्तिशिल्प की तीन पंक्तियाँ हैं जिनमें सबसे ऊपर छोटी पंक्ति जिसमें गंधर्व का बड़ा ही सजीव चित्रण आकाश में उड़ते हुए किया गया है **(चित्र सं.–2.24)**। तथा नीचे की दो पंक्तियों में बड़े मूर्ति शिल्प अन्य मंदिरों के समान इनमें नंदीकेश्वर शिव, अप्सराएँ व नागकन्या, शार्दूल आदि को देखा जा सकता है। **(चित्र सं.–2.25)**। इसी क्रम में दक्षिणी आले में भगवान शिव को अंधकासुर का वध करते हुए एवं उसी के ऊपर वाले आले में भगवान शिव को पद्यमासन में बैठे हुए दिखलाया गया है **(चित्र सं.–2.26)**।

8. पार्श्वनाथ मंदिर स्थापत्य व मूर्तिशिल्प :

यह मंदिर भी संधार मंदिर है। यह पंचरथ शैली में बना है। यह मंदिर जैन समूह का सबसे उत्कृष्ट मंदिर है। पुरातत्व के सुप्रसिद्ध शोधक और प्रकाण्ड विद्वान फर्ग्युसन इसे कंदारिया महादेव मंदिर की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ कहते हैं। यह मंदिर भी आंतरिक संरचना की दृष्टि से पांच भागों में विभाजित है। मण्डप, महामण्डप, अंतराल, प्रदक्षिणापथ व गर्भगृह इसके अतिरिक्त इस मंदिर में अन्य मंदिरों के समान प्रकाश के लिए झरोखों की बजाए छोटे–छोटे छिद्र बने हैं इन्हीं की सहायता से प्रकाश अंदर प्रवेश करता है **(चित्र सं.–2.27)**।

इस मंदिर के गर्भगृह में 23वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ जी की श्याम वर्ण पाषाण प्रतिमा विराजमान है **(चित्र सं.–2.28)**। मंदिर की वाह्य भित्ति पर अप्सराओं के मूर्तिशिल्प का बहुत ही सुंदर अंकन है। यहाँ इन मूर्तियों में शिल्पकार ने

कामनीय देह, लोच व चलक को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने में सफलता प्राप्त की है। इस मंदिर के प्रमुख मूर्ति शिल्पों में काजल लगाती अप्सरा, दर्पण में मुख निहार कर केश विन्यास करती हुई अपने अलंकारों का अवलोकन कर रही है तो कहीं अपने पैरों पर मेंहदी रचाती हुई तो कहीं प्रोषित प्रतिका प्रेम पत्र लिख रही है तो कहीं स्नेहवत्सला जननी अपने शिशु को स्तनपान करा रही है **(चित्र सं.–2.29)**। ऐसे अनेक उदाहरण इस मंदिर में देखने को मिलते हैं।

पाद टिप्पणी :

1 **स्थापत्य**–इनमें प्रथम और प्रधान, मानव की पहली आवश्यकता, आवास का सृष्टा, वह वास्तु शिल्प है, जिसे स्थापति उसे खड़ा करता है वही स्थापत्य है–मनुष्य और देवता दोनों का वास स्थान।
उपाध्याय, भगवतशरण, भारतीय कला की भूमिका, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, प्रा. लिमिटेड : नई दिल्ली, संस्करण, 1980, पृ. 1

2 कुमार, कृष्ण, प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास, श्री सरस्वती सदन : नई दिल्ली, संस्करण, 1993, पृ. 566

3 उपाध्याय, भगवतशरण, भारतीय कला की भूमिका, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, प्रा. लि. : नई दिल्ली, संस्करण, 1980, पृ. 3

4 पूर्वोद्धृत, पृ. 3

5 पूर्वोद्धृत, पृ. 4–5

6 यादव, डॉ. रूदल प्रसाद, भारतीय कला, विजय प्रकाशन मंदिर, वाराणसी, संस्करण, 2008, पृ. 72–73

7 शर्मा, डॉ. श्याम, प्राचीन भारतीय कला, वास्तु कला एवं मूर्तिकला, रिसर्च पब्लिकेशंस : जयपुर, एन.डी., पृ. 89–90

8 पूर्वोद्धृत, पृ. 114

9 यादव, डॉ. रूदल प्रसाद, भारतीय कला, विजय प्रकाशन मंदिर, वाराणसी, संस्करण, 2008, पृ. 77–78

10 Harle, J.C., The Art and Architecture of the Indian Subcontinent, Penguin Books : England, First Published, 1986, P.-111

11 शर्मा, डॉ. श्याम, प्राचीन भारतीय कला, वास्तु कला एवं मूर्तिकला, रिसर्च पब्लिकेशंस : जयपुर, एन.डी., पृ. 91

12 यादव, डॉ. रूदल प्रसाद, भारतीय कला, विजय प्रकाशन मंदिर, वाराणसी, संस्करण, 2008, पृ. 77–78

13 पूर्वोद्धृत, पृ. 77

14 पूर्वोद्धृत, पृ. 77–79

15 पूर्वोद्धृत, पृ. 79–80

16 श्रीवास्तव, कृष्ण चन्द्र, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, ग्यारहवीं आवृत्ति, संस्करण, 2011–12, पृ. 613

17 जुगनूं, डॉ. श्रीकृष्ण, शर्मा, प्रो. भैंवर, समरांगणसूत्रधार, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस : वाराणसी, भाग–2, संस्करण, 2011, पृ. 415

18 पूर्वोद्धृत, पृ. 416

19 श्रीवास्तव, कृष्ण चन्द्र, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, ग्यारहवीं आवृत्ति, संस्करण, 2011–12, पृ. 613

20 पूर्वोद्धृत, पृ. 613

21 पूर्वोद्धृत, पृ. 613–614

22 पूर्वोद्धृत, पृ. 613–614

23 पूर्वोद्धृत, पृ. 613–614

24 पूर्वोद्धृत, पृ. 613–614

25 **द्राविड़**–मंदिर वास्तु की वह विशिष्ट शैली जो दक्षिण में प्रचलित है तथा पिरामिडाकार शिखर से युक्त है।

यादव, डॉ. रूदल प्रसाद, भारतीय कला, विजय प्रकाशन मंदिर, वाराणसी, संस्करण, 2008, पृ. 157

26 शर्मा, डॉ. श्याम, प्राचीन भारतीय कला, वास्तु कला एवं मूर्तिकला, रिसर्च पब्लिकेशंस : जयपुर, एन.डी., पृ. 114

27 प्रताप, डॉ. रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, संस्करण, 2009, पृ. 522

28 **गजपृष्ठ–**

अग्रतः सूरसेनः स्थात् पृष्ठत कुंजराकृति।

सीमानमष्टधा कृत्वा विभजेत्रेन्दने यथा।।43।।

इस प्रसाद की आगे से रचना सूरसेन जैसी और पीछे से गजाकृति की होगी। (समरांगणसूत्रधार 58/43/173), भाग–2

29 **गोपुर**–द्राविड मंदिरों का प्रवेश द्वार जिसमें गाय की सींग की भांति प्रवेश द्वार के ऊपर तोरण बने हों।

यादव, डॉ. रूदल प्रसाद, भारतीय कला, विजय प्रकाशन मंदिर, वाराणसी, संस्करण, 2008, पृ. 156

30 **चालुक्य**–चालुक्य नरेशों ने मिश्रित बेसर शैली को प्रोत्साहन दिया था। बेसर शैली के इन मंदिर को स्वरूप कुछ विशिष्ट ही होता है। विमान शिखर छोटा, फैले कलश, मूर्तनों का आधिक्य अलंकरण परम्परा का बहुल्य यह इनकी विशेषता है। दकन में मिलने वाले इन मंदिरों के शिल्प को उन्नति के शीर्ष पर पहुँचाने का भागीरथ प्रयास चालुक्यों और होयसलों ने सर्वाधिक किया है।

शर्मा, डॉ. श्याम, प्राचीन भारतीय कला, वास्तु कला एवं मूर्तिकला, रिसर्च पब्लिकेशंस : जयपुर, एन.डी., पृ. 114–115

31 पूर्वोद्धृत, पृ. 114–115

32 पूर्वोद्धृत, पृ. 101

33 अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारतीय कला, पृथ्वी प्रकाशन : वाराणसी, षष्टम् संस्करण, 2010, पृ. 1

34 भारती, मीनाक्षी कासलीवाल, भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी : जयपुर, प्रथम संस्करण, 2009, पृ. 117–118

35 पूर्वोद्धृत, पृ. 118

36 https//en.m.wikipedia.org

37 भारती, मीनाक्षी कासलीवाल, भारतीय मूर्तिकला एवं स्थापत्य कला, पूर्वोद्धृत, पृ. 118–119

38 पूर्वोद्धृत, पृ. 119–120

39 **रथ**–प्रारंभिक पल्लवों के काल में विभिन्न रथों का निर्माण हुआ। रथ पल्लव वास्तुकला का विशेष शब्द है। महाबलीपुरम नामक स्थान पर बने हुए पंचपांडव तथा द्रोपदी नाम से ज्ञात वास्तु निर्माण के लिए इस शब्द का प्रयोग हुआ है। रथों का निर्माण अनुमानतः प्रथम नरसिंहवमेत्र महामल्ल के समय में प्रारंभ हुआ। रथ इन्हें इस लिए भी कहा गया क्योंकि यह मंदिर एक ही चट्टान को काटकर जमीन के ऊपर अलग रखी हुई चट्टान अर्थात् समुद्र के किनारे बिखरी हुई चट्टानों पर यह रथ निर्माण हुआ इन्हें एक जगह से दूसरी जगह ले जाना भी संभव है क्योंकि यह जमीन पर ऊपर रखे हुए मंदिर हैं।

मिश्र, रमानाथ, भारतीय मूर्तिकला का इतिहास, ग्रंथ शिल्पी : दिल्ली, पुनर्मुद्रण संस्करण, 2008, पृ. 234

40 भारती, मीनाक्षी कासलीवाल, भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी : जयपुर, प्रथम संस्करण, 2009, पृ. 175

41 पूर्वोद्धृत, पृ. 175

42 गैरोला, वाचस्पति, भारतीय संस्कृति और कला, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थानः लखनऊ, तृतीय संस्करण, 2006, पृ. 480